नाथ सम्प्रदाय की योग साधना का सिद्धान्त एवं विचार

रंजना आचार्या [1], डॉ0 के0एच0एच0वी0एस0एस0 नरसिम्ह मूर्ति [2]

1. **शोध छात्रा,** काय चिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय, भारतीय आर्युविज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
2. **शोध निर्देशक,** पर्यवेक्षक निरीक्षक, काय चिकित्सा, आयुर्वेद संकाय, भारतीय आर्युविज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,

सारांश :–

नाथयोग की साधना का नाम हठयोग है जो अति प्राचीन है तथा अभ्यास अत्यन्त कठिन। हठयोग अपेक्षाकृत पूर्ण साधना है, जिसमें क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म की ओर क्रमबद्ध विकास प्रक्रिया को अपनाया गया है इसके अन्तर्गत कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर षट्चक्रों को भेद करके शिव से संयुक्त होने या जाप क्रिया के अजपा में विलीन होने या आहत नाद का अनाहत नाद में समाहित होने या इड़ा और पिंगला नाड़ी को सुषुम्ना से मिलाकर त्रिकुटी में संगम करने, से सभी स्थूल का सूक्ष्म में विलीन होना है।

शब्द कुन्जी :– नाथ योग, गोरखनाथ, शिव, पिण्ड (शरीर) हठयोग, कुण्डलिनी।

प्रस्तावना :–

नाथ योगी स्वयं को शिव गोत्र (शिव से उत्पन्न) मानते है। यद्यपि वे शिव की निष्क्रिय रुप के उपासक होते है, किन्तु 'शक्ति' शिव के बिना सामर्थ्यहीन है। गोरखनाथ स्वयं शिवरुप है। इस योग साधना के प्रवर्तक भी आदिनाथ या शिव ही माने जाते है। नाथ योग में साकार निराकार का कोई महत्व नहीं है। शिव चैतन्य है, पूर्ण शाक्ति है जबकि शक्ति के अन्तर्गत परिवर्तन एवं विकास सम्भव है। यद्यपि 'शिव' और 'शक्ति' एक–दूसरे से अभिन्न है तथापि दोनों के धर्म अलग है।

नाथ सम्प्रदाय में सुख–दुख, गुण–दोष, मित्र–शत्रु का कोई प्रभाव नहीं होता। पिण्ड में ब्रह्माण्ड को बसाने वाले गोरखनाथ बहुत ही सूझ–बूझ के साधक थे। गोरखनाथ ने अपने सम्प्रदाय के कुछ मूल सिद्धान्तों को स्थापित किया जिनमें ब्रह्म, माया, जगत, शब्द (नाद), आत्मा या जीव, गुरु, शून्य, कुण्डलिनी, सहज उल्लेखनीय है। साधना में जहाँ संवेदना का अभाव हो जाता है उस स्तर को अवधूत दशा या मुक्त दशा कहते है। अवधूत अर्थात् त्याग एवं भोग दोनों के प्रभाव से दूर होना होता है।

केवल आत्मानुशासन से ही व्यक्ति (जीवात्मा) के स्तर से उपर उठकर शिव के साथ एक रुप हो जाता है। 'ऊँ' मंत्र के ध्यान से योगी बाह्य जगत् को छोड़कर अगोचर के साथ एकरुप हो जाता है। अर्थात् योगी सूक्ष्म शरीर में प्रवेश कर जाता है। ऐसे योगी को हठयोग की सहायता से प्राणवायु व अपान वायु पर नियन्त्रण हो जाता है।

यद्यपि हठयोग की परम्परा प्राचीन है किन्तु गोरखनाथ ने इसको बृहदरूप दिया तथा नाथसिद्धों की साधना का आधार हठयोग हुआ। हडिपा एवं गोरखनाथ जैसे योगी तान्त्रिक शक्तियों की प्राप्ति के लिए प्राणवायु पर नियन्त्रण के लिए साधना किये जिससे शिवत्व की प्राप्ति हुई और हठयोग उसका साधना बना।

हठयोग 'ह' कार से सूर्य और 'ठ' कार से चन्द्र मिलकर बना है। इसी को राजयोग भी कहते हैं। हठयोग मे 'चन्द्र' का अर्थ है वाम भाग की नाड़ी। जिसे इड़ा कहते है। 'सूर्य दाहिने' भाग की नाड़ी जिसे पिंगला कहते है। यहाँ सूर्य–चन्द्र दिन–रात का प्रतीक है। चन्द्रमा सूर्य का (प्राण वायु–अपानवायु का, जीवात्मा–परमात्मा का) एक करना यही हठयोग है।) अतः जब कोई योगी उन्हें नियन्त्रित कर लेता है तब वह काल पर विजय प्राप्त कर लेता है।

जब योगी की दशा इन्द्रियातीत हो जाती है तब वह समाधि की अवस्था हो जाती है जो यौगिक साधना की चरम अवस्था है। नाथ योगियों के मत में समाधि वैसा ही है जैसा जल तथा सैंधव की सी जीवात्मा परमात्मा की ऐक्यता। जिसे 'युगनद्वय' अवस्था माना जाता है।

मानव शरीर को अनन्त ब्रह्माण्ड का सूक्ष्मतम रुप माना गया है। शिव और शक्ति शरीर में निवास करते है। नाड़ी केन्द्रों में शक्ति अपनी सुप्तावस्था में रहती है। योगी इसे उर्ध्वमुखी कर सुषुम्ना के रास्ते उसे ले जाकर 'सहस्रार' (शिवतत्व) से जोड़ देता है। इस प्रकार शिव एवं शक्ति की अदृश्य अवस्था हो जाती है।

इड़ा और पिंगला के नियन्त्रित होने के उपरान्त आत्मा के भीतर अनाहत नाद की ध्वनि सुनाई देती है। अर्थात् (अद्योगामी एवं ऊर्ध्वगामी दोनों को योगाभ्यास द्वारा नियन्त्रण कर मध्यनाड़ी से प्रवाहित करना एवं कुम्भक द्वारा स्थिर कर देना)। जिससे श्वास नियन्त्रित हो जाती है और वह चरमलक्ष्य (समाधि) को प्राप्त कर लेता है।

नाथ सिद्धों का चरम लक्ष्य जीवनमुक्ति था। योगी के लिए जीवनमुक्ति परिशुद्ध या पराभौतिक शरीर की प्राप्ति के रूप में अमरत्व को प्राप्त करना होता है। योगी इस अवस्था में अपनी इच्छानुसार विहार कर वायु मार्ग से आध्यात्मिक मार्ग–दर्शन भेज कर दूरवर्ती स्थानों के अपने शिष्यों की सहायता करता था।

गोरखनाथ जी ने 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' पुस्तक कें आरम्भ में ही **निजाशक्ति**, (जो आकृति विहिन नित्य, निरन्तर चलायमान हो) **परा**, (कभी नष्ट न होने वाला) **अपरा**, (परमेश्वर के क्रिया शक्ति का संचालन) **सूक्ष्मा** (अहं या त्वं के भाव का अभाव) व **कुण्डलिनी शक्ति** (अखण्ड, अनन्त, शाश्वत, एकरस) के बारे में बताते हुए उनके कार्य व रुप को दर्शाया है। पंच शक्तियों में शक्ति–चक्र क्रम से एक–एक पिण्ड का प्रादुर्भाव होता है और इन पिण्डो के पंचदेव होते हैं। शक्ति चक्र–त्रिकोण जिसके मध्य बिन्दु (परमब्रह्म) है। जब शिव की शक्ति का विकास होता है तब वह शक्ति एक साथ तीन आकारों को धारण करती है और वे तीन आकार है– इच्छा, ज्ञान और क्रिया अर्थात् रूद्र, विष्णु और ब्रह्म अर्थात् सत्व, रज और तम् आकारों को धारण करने के बाद जिसमें सत्व, रज और तम जो मन, बुद्धि एवं इन्द्रिय आदि के संचालन में मुख्य भूमिका निभाती है उनके मुख्य गुण विशेष इस प्रकार है– **सत्व** गुण– आत्मज्ञान व परमात्मा के प्रति विश्वास, **रज** गुण– जीव को कर्म बन्धन में बाँधना (जो कामना और आसक्ति को जन्म देता है) और **तम** गुण में मनुष्य के कर्त्तव्य में अप्रवृत्ति तथा प्रमादमयी वृत्तियों का जन्म। नाथ योगी का ब्रह्म पिण्ड और ब्रह्माण्ड से अलग है। उनका आशय था कि शरीर में परमात्मा रहता तो यह शरीर मरता नहीं। इनके सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता इनके गुरु का योग का ज्ञाता होना है इनके गुरु सैद्धान्तिक व क्रियात्मक रुप से साधक सिद्ध होते है।

नाथ सम्प्रदाय में माया (अविद्या, अज्ञानता, भ्रम) को माना गया है। माया की प्रमुख जड़ नारी का त्याग या नारी को माँ की संज्ञा से सम्बोधन ही गुरु का शिष्य बनाता है। अनाहत नाद को प्राप्त करने के बाद ही शिव (निरंजन) की प्राप्ति की जाती है जो गुरु के द्वारा प्राप्त कराया जाता है। जो पुरुष माया अर्थात् अज्ञान से निर्लिप्त होकर विषय–भोग में आसक्त हो जाते है उनके लिए कुण्डलिनी बन्धनकारिणी होती है, परन्तु जो मुद्रा, बन्ध, चक्रबेधन, एवं प्राणायाम के द्वारा इस महाशक्ति को सिद्ध कर लेता है, वह यह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

यौगिक दृष्टि से पिण्ड (शरीर) विचार :–

यौगिक दृष्टि से पिण्ड विचार अन्तदर्शन और ध्यान पर आधारित है। हमारा शरीर शिव–शक्ति की अभिव्यक्ति का पवित्र माध्यम है। हमारे शरीर में नवचक्र, सोलह आधार, त्रिलक्ष्य और पंचव्योम स्थित है, जो निम्न हैं–

नव चक्र :– मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, नाभि चक्र, अनाहत चक्र, कण्ठ चक्र, तालु चक्र, भ्रू चक्र, ब्रह्मरन्ध चक्र, आकाश चक्र। ये सभी ध्यान साधना की अलग–अलग अवस्था में उपयोग आते हैं। जो योगी शरीर में स्थित नौ चक्र को नहीं जानता उसको योगतत्व वेत्ता नहीं माना जाता।

सोलह आधार :– पादाङ्गुष्ठाधार, मूलाधार, गुदाधार, मेढ्र (लिंग), उड्डियाण आधार, नाभि आधार, हृदयाधार, कण्ठाधार, घण्टिकाधार, तालु आधार, जिह्वाधार, भ्रूमध्याधार, नासिकाधार, नासामूलक आधार, कपाटाधार, ललाटाधार, ब्रह्मान्ध्र आधार।

त्रिलक्ष्य :–(क) अन्तर्लक्ष्य (मस्तक का उपरिभाग), (ख) बहिर्लक्ष्य (नासिका के अग्रभाग से दो अंगुल आगे), (ग) मध्यमलक्ष्य– किसी पदार्थ या स्वशरीर के किसी अंग पर ध्यान। त्रिलक्ष्य मन को स्थिर करने के लिए उपाय के रूप में योगशास्त्र में वर्णित है।

व्योमपंचक :– शास्त्र में पंचविध आकाश वर्णित है, जैसे– **आकाश**– शरीर के बाह्य एवं अन्तःप्रदेश में निर्मल और निराकार आकाश का ध्यान, **पराकाश**– अन्धकारमय परा आकाश का ध्यान, **महाकाश** में प्रलयकाल की अग्नि के समान महाकाश का ध्यान, सच्चिदानन्दस्वरूप तत्वाकाश का ध्यान, करोड़ों सूर्यों के सदृश प्रकाशमय **सूर्याकाश** का ध्यान। इस प्रकार से साधक ध्यान करके आकाश सदृश निर्मल, व्यापक, तेजोमय एवं दिव्य हो जाता है।

'गोरक्ष पद्धति' में षड़ांग योग (आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) एवं 'सिद्धसिद्धान्त पद्धति' में अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) का वर्णन कर समग्र योग दर्शन का स्वारस्य भर दिया है।

अष्टांग योग :–

यम :– इन्द्रियादि को वश में रखकर चित्त का उपशम (शान्ति) प्राप्त करना।

नियम :– मन के क्रियाकलाप पर निग्रह (द्वन्द्व से विरक्ति) रखते हुए सन्तोष धारण करना।

आसन :– स्व स्वरूप में चेतना का स्थापन (संस्थिति) एवं बैठना।

प्राणायाम :– शरीर में स्थित नाड़ियों में प्राण के प्रवाह को स्थिर रखना। इसके चार प्रकार हैं– (1) रेचक, (2) पूरक, (3) कुम्भक, (4) प्राण–अपान का मेल।

प्रत्याहार :– चेतन (आत्मा) के पंच इन्द्रियों का विषयों से प्रत्याहरण (लौटाना)

धारणा :– सम्पूर्ण शरीर में सर्वत्र एक ही तत्व (आत्मा) व्याप्त होने की भावना।

ध्यान– आतमस्वरूप (समस्त प्राणियों में एकमात्र परमात्मा की व्याप्ति) की भावना का ध्यान।

समाधि :– साधक के अन्तःकरण की सभी तत्वों के प्रति एक समान सी तटस्थ अवस्था।

नर–नारी रुप प्रकृति पिण्ड की सृष्टि का वर्णन कर उन्होंने बताया है कि ब्रह्म के अवलोकन रूप संकल्प से स्त्री युक्त पुरुष प्रकृति पिण्ड की उत्पत्ति होती है। इसके उपरान्त ही जरायुज आदि भौतिक शरीर की उत्पत्ति मानी गई है। नाथ योग मानव–पिण्ड को ही योग सिद्धी का सर्वोत्तम साधन मानते हैं। मानव–पिण्ड में स्थित कुण्डलिनी को ही जागृत करके उसे शिव से

समरस किया जाता है। शक्ति का यह कुण्डलित रूप विश्व क्रम से आकाश, वायु, अग्नि, जल और क्षिति इन पाँच महाभूतों के अविर्भाव से साकार हुआ है। भौतिक शरीर के लिए जिन स्तरों से व्यक्ति को गुजरना पड़ता है उनमें सबसे अन्तिम स्तर प्रकृति एवं गर्भ पिण्ड है।

स्थूल शरीर पर विचार :–

(तच्च पन्च–पन्चात्मक शरीरम्। सि0सि0प0)

यही प्रकृति पिण्ड (शरीर) भूमि (पृथ्वी) आदि पाँच भूतों के पाँच–पाँच गुणों से युक्त होकर पान्चभौतिक शरीर कहलाता है। ये ही हमारे स्थूल शरीर है जो निम्न है–

- प्रथम अस्थि (हड्डी), द्वितीय मांस, (शरीर के वह अंश जो मृदू, श्लक्ष्ण एवं रक्त वर्ण होता है तथा अस्थि स्नायु को ढका रहता है।) तृतीय त्वचा (चर्म), चतुर्थ नाड़ी (स्नायु) तथा पंचम रोम (बाल–रोयाँ)। शरीर के रचनाक्रम में इन गुणों को माना गया है जिसे व्यवहार में 'पार्थिव' भी कहा जाता है।
- भौतिक शरीरस्थ जलतत्व के पाँच गुण जिनमें प्रथम लाला (लार) द्वितीय– मूत्र, तृतीय–शुक्र (वीर्य), चतुर्थ–शोणित (रक्त) तथा पंचम–स्वेद (पसीना)।
- अग्नि तत्व के पाँच गुण है जो हमारे स्थूल शरीर के मुख्य कारक है जो इस प्रकार हैं– प्रथम–क्षुधा (भूख), द्वितीय– तृष्णा (प्यास), तृतीय– निद्रा (नींद), चतुर्थ– कांति (आभा) एवं पंचम आलस्य (सुस्ती)।
- वायुतत्व के पाँच गुण इस प्रकार है प्रथम– धावन (दौड़ना), द्वितीय भ्रमण, (घूमना), तृतीय प्रसारण (फैलाना), चतुर्थ– आंकुचन (सिकुड़ना) एवं निरोधन (रोकना)। ये शरीर के जीवित रहने में मुख्य कारण है क्योंकि शरीर में वायु की स्थिति ही उसकी सजीवता सिद्ध करती है।
- आकाशतत्व के पाँच गुण इस प्रकार है– प्रथम राग, द्वितीय द्वेष, तृतीय भयम्, चतुर्थ लज्जा, पंचम मोह।

  यह शरीर के व्यवहार के मुख्य कारण है जिसके कारण शरीर में द्वन्द भावों की उत्पत्ति होती है।

विशेष– यद्यपि ये राग–द्वेष इत्यादि अन्तःकरण के धर्म है, तथापि इनका स्थान हृदय से कर दी गई है इसलिए इसे आकाशतत्व में समाहित कर दिया गया है।

इस प्रकार प्रत्येक भूत के पाँच–पाँच गुणों द्वारा पिण्ड शरीर की उत्पत्ति मानी गई है।

सूक्ष्म शरीर पर विचार :–

अन्तःकरण पन्चक के अन्तर्गत इनकी पाँच वृतियों का वर्णन इस प्रकार से किया गया है मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और चैतन्य।

यहाँ इनके भी पाँच–पाँच गुण धर्मो को बताया गया है जो निम्नलिखित है–

- मन का प्रथम गुण– संकल्प है (इच्छा व कल्पना) द्वितीय गुण– विकल्प, (मानसिक उहापोह) तृतिय गुण–मूर्च्छा है (विमूढ़ता, अचेत), चतुर्थ गुण–जड़ता है– (विवेक का अभाव) तथा पंचम गुण–मनन (तर्कसंगत विचारणा) को 'मनन' कहते है।
- बुद्धि के पांच गुणों में प्रथम विवेक (वस्तु के स्वरुप का निश्चय), द्वितीय वैराग्य (मन की आशक्ति का निरुद्ध होना), तृतीय गुण शान्ति (चित्त की चंचलता की समाप्ति), चतुर्थ सन्तोष (भोग में अनासशक्ति) पंचम गुण क्षमा है जिसे स्थितप्रज्ञ अवस्था भी कहते है।
- अहंकार अन्तःकरण पंचक गुण के अन्तर्गत प्रथम अवस्था अभिमान की होती है (केवल खुद को ही सामर्थ्यवान समझना), द्वितीय अवस्था– मदीय अर्थात् (मेरा का बोध), तृतीय अवस्था– मम सुखम् (इस सुख से केवल मेरा ही सम्बन्ध रहे), चतुर्थ अवस्था– ममंदुखम् अहंकार (मैं इससे दुःखी हूँ) पंचम अवस्था ममेदम् (मेरापन का भाव)
- **चित्त के पाँच गुण–** पाँच अवस्थाओं में प्रथम मति अर्थात् (इच्छा) है द्वितीय धृति अर्थात् (उत्साह), तृतीय स्मृति अर्थात् (संस्कार से उत्पन्न ज्ञान), चतुर्थ– त्याग (प्रिय वस्तु का दान) तथा पंचम–स्वीकार अर्थात् (दान को स्वीकार करना) है।
- **चैतन्य** के पाँच गुण की अवस्थाए इस प्रकार है– प्रथम –विमर्श अर्थात् (वस्तु–विचार), द्वितीय– शीलन (गुणदोष की जानकारी होना), तृतीय धैर्य (इन्द्रियों को उत्साहित करना), चतुर्थ– चिन्तन अर्थात् (अपने किये गये कार्यो के प्रति जागरुक), पंचम– निःस्पृहत्व अर्थात् (विषयभोग से दूर रहना)।

इस प्रकार हमारे सूक्ष्म शरीर के गुणों का वर्णन उपरोक्त प्रकार से बताया गया है।

पंचशक्तियों के उपर्युक्त गुणों के समुदाय से सगुण परमेश्वर के पिण्ड का आविर्भाव होता है। मानव शरीर की ये पाँच अवस्थाएं जिसे 'जीव' की संज्ञा दी गई है। जीव मुमुक्ष तभी होता है। जब उसे शिव के साथ अपनी एकात्मकता का बोध होता है, तथा जीव को अपने स्त्रोत एवं स्वरुप का ज्ञान होता है। गोरखनाथ के अनुसार इस प्रकार पिण्ड बनने से जीव अस्तित्व में आता है शिव के अन्तिम अभिव्यक्त रुप ब्रह्मा के अवलोकन से सम्मिलन होता है जिससे गर्भ पिण्ड में जीव की उत्पत्ति होती है।

गर्भ से शरीर (पिण्ड की उत्पत्ति का विचार)

गुरु गोरखनाथकृत योगग्रन्थ 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' में पिण्ड की उत्पत्ति के विचार के अन्तर्गत स्थूल शरीर में धातु की मात्रा इस प्रकार से बताई गई है–

शरीर में वीर्य साढ़े तीन पल (225 ग्राम), रक्त बीस (20) पल, 1280 ग्राम, मेद 12 पल (738 ग्राम), मज्जा 10 पल (640 ग्राम), मांस 100 पल (6400 ग्राम), पित्त दश पल (640 ग्राम), कफ (20) पल (1280 ग्राम) वात 20 पल (1280 ग्राम), भार में होते है। आस्थियाँ की संख्या– 360 एवं सन्धियों की संख्या (360) ही है। तथा रोम कूपों की संख्या साढ़े तीन करोड़ (35000000) है।

निष्कर्ष :–

योगी की साधना का लक्ष्य समस्त प्रवृतिजन्य विकारो से मुक्त होकर अवधूत अवस्था को प्राप्त करना है। नाथयोगी ऐसा मानते है कि यदि जीव चाहे तो मानवरूप में जन्म लेने से मुक्त होकर शिवस्वरुप परम पद प्राप्त कर लेता है।

मानव–पिण्ड–स्थित समस्त जड़–चेतन तत्व परस्पर जुड़े हुए है। एक का प्रदूषण दूसरे को प्रभावित करता है। बुद्धि के विकास को लेकर मनुष्य ब्रह्माण्ड विजय की बात करता है परन्तु बुद्धि स्वयं पिण्ड के समग्र अस्तित्व का एक अंग मात्र है। योगी साधक ऐसे जगत के अनुसंधान में रत रहता है तो शाश्वत है; द्वन्द्वातीत है, लौकिक संसार की समस्त विषमताओं, राग–द्वेष, हानि–लाभ, जय–पराजय से परे है। नित्य आनन्दित है। स्थूल पान्च भौतिक शरीर को त्यागकर परंब्रह्म में लीन हो जाना ही उनकी मुक्ति है। इस विवेचन में पिण्ड रचना के स्थूल–तत्वों से चलकर क्रमशः सूक्ष्म तत्वों की ओर प्रस्थान किया गया है। मनोजगत् तक आने के बाद गोरखनाथ ने 'अन्तःकरण पंचक' का विवेचन किया। अन्त में यही कह सकते है कि भाव–अभाव, सत्–असत् द्वैत–अद्वैत, निर्गुण–सगुण से परे परमतत्व ही योगियों का साध्य है।

शिव और शक्ति के समरसीकरण में वे इसी अवधारणा को व्यक्त करते है। जड़ और चेतन का विषमत्व ही सारे द्वन्दों की सृष्टि करता है। यह पिण्ड और ब्रह्माण्ड का विषमतत्व ही है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड का समरसत्व ही मनुष्य और प्रकृति का या व्यक्ति और पर्यावरण का सामन्जस्य है। कहना न होगा कि यह जड़ चेतन का 'समरसत्व' वही है जो योगी साधकों का साध्य रहा है। आज भी हमें यदि सभी प्रकार के द्वन्द्वो–वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय से ऊपर उठकर आध्यात्मिक ही नहीं व्यावहारिक जीवन को भी सुन्दर बनाना है, तो 'समरसीकरण' की साधना को लक्ष्यरुप में अपनाना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ :–

1. सिद्ध सिद्धान्त पद्धति– स्वामी द्वारिकादासशास्त्री
2. योग के विविध आयाम– डॉ0 रामचन्द्र तिवारी
3. योग सिद्धान्त एवं साधना– पं0 हरि कृष्ण शास्त्री दातार
4. हठयोग प्रदीपिका– पं0 मिहिर चन्द्र
5. गोरख पद्धति– पं0 महीधर
6. शिव संहिता– राघवेन्द्र शर्मा 'राघव'
7. योग पद्धति–
8. घेरण्ड संहिता– श्री स्वामीजी महाराज
9. योगरसायनम्– स्वामी ब्रह्मानंदजी
10. प्राणायाम– बी0के0एस0 आयंगार